भगवान् महावीरका अध्यात्मिक मार्ग

धर्मका ह्रास, समाजका ह्रास, देशका ह्रास जब चरम सीमाको प्राप्त हो जाता है उस समय किसी अनोखे महापुरुषका अवतार-जन्म-प्रादुर्भाव होता है और वह अपने असाधारण प्रभावसे उस ह्रासको दूर करनेमें समर्थ होता है। वास्तवमें उस पुरुषमें महापुरुषत्व भी इसी समय प्रकट होता है और अनेकानेक शक्तियों तथा परमोच्च गुणोंका पूर्ण विकास भी तभी होता है। वह अपने समूचे जीवनको लोक-हितमें समर्पित कर देता है।

भगवान् महावीर ऐसे ही महापुरुषोंमें हैं। उन्होंने अपने जीवनके प्रत्येक क्षणको लोक-हितमें लगाया था। विश्वको आत्मकल्याणका सन्देश दिया था। उस समय विविध मतोंकी असमञ्जसता तीव्र गतिसे चल रही थी। धर्मका स्थान सम्प्रदाय तथा जातिने घेर लिया था। एक सम्प्रदाय एवं जाति दूसरे सम्प्रदाय एवं जातिको अपना शत्रु समझती थी। आजसे भी अधिकतम साम्प्रदायिकताकी तीव्र अग्नि उस समय धधक रही थी। दार्शनिक सिद्धान्तोंसे स्पष्ट मालूम होता है कि बौद्ध और ब्राह्मण (याज्ञिक) आपसमें एक दूसरेको अपना लक्ष्य (वेध्य-भक्ष्य) समझते थे। आजके हिन्दू और मुसलमानों जैसी स्थिति थी। याज्ञिक यज्ञोंमें निरपराध पशुओंके हवनको धर्म बताते थे। उनके विरुद्ध बौद्ध याज्ञिक हिंसाको अधर्म और पापकृत्य बताते थे।

युक्तिवादको लेकर याज्ञिक कहते कि :—

"वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, आत्मनो नित्यत्वात्" वेदविहित हिंसा हिंसा (जीवघात) नहीं है, क्योंकि आत्मा नित्य है, अमर है, उसका विनाश नहीं होता। भौतिक शरीर, इन्द्रिय, प्राण आदिका ही विनाश होता है। इसकी पुष्टि करनेके लिये वे एड़ीसे चोटी तक पसीना बहाते थे। उधर बौद्ध भी युक्तिवादमें कम नहीं थे। वे भी "सर्वं क्षणिकं सत्वात्" समस्त चीजें नाशशील हैं क्योंकि सत् हैं—इस स्वकल्पित सिद्धान्तकी भित्तिपर "वैदिकी हिंसा हिंसा अस्त्येव आत्मनोऽनित्यत्वात्" 'वेद में कही हिंसा जीवघात ही है क्योंकि आत्मा अनित्य है, मरती है, उसका विनाश होता है' इस सिद्धान्तको झट रचकर उनका खंडन कर देते थे। यही कारण है कि याज्ञिकोंको बौद्धोंके प्रति प्रतिहिंसाके भावोंको लेकर उनके पराजित करनेके लिये छल, जाति, निग्रहस्थानोंकी सृष्टि करनी पड़ी, फिर भी वे इस दिशामें असफल रहे।

भगवान महावीर ऐसी-ऐसी अनेकों विषम स्थितियों, उलझनोंको तीस वर्षकी आयु तक अपनी चर्म-चक्षुओं और ज्ञानचक्षुओंसे देखते-देखते ऊब गये, उनकी आत्मा तिलमिला उठी, अब वे इन विषमताओं, अन्यायों, अत्याचारोंको नहीं सह सके। फलतः संसारके समस्त सुखोंपर लात मार दी, न विवाह किया, न राज्य किया और न साम्राज्यके ऐश्वर्यको भोगा। ठीक है लोकहितकी भावनामें सने हुए पुरुषको इन्द्रिय-सुखकी बातें कैसे सुहा सकती हैं। सुखको भोगना या जनताके कष्टोंको दूर करना दोनोंमेंसे एक ही हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर संसार, शरीर, विषय-भोगोंसे विरक्त होकर पहले अपनेको पूर्ण बनानेके लिये उन्मुख हुये, क्योंकि वे अच्छी तरह समझते थे कि मैं अपूर्ण अवस्था और साम्राज्यशक्तिसे लोकका पूरा-पूरा हित नहीं कर सकता हूँ। भले ही साम्राज्यशक्तिसे तात्कालिक याज्ञिक हिंसा बन्द हो जावे, पर यह असर उनके शरीर तक ही सीमित रहेगा, आत्मा तक नही पहुँचेगा। आदेशका असर शरीर तक ही सीमित रहता है जबकि उपदेशका असर आत्मापर होता है और चिरस्थायी होता है। इन सब बातोंको विचारकर भगवान् महावीरने साम्राज्य-शक्तिको न आजमाकर आत्मशक्तिको ही आज़मानेका सफल प्रयत्न किया। फलतः लगातार १२ वर्षकी कठोर तपश्चर्याके बाद उन्हें पूर्णत्वकी प्राप्ति हो गई और वे सर्वज्ञ कहे जाने लगे।

भगवान् महावीरने उक्त असमञ्जसताओंको दूर करनेवाले सफल तथ्य साधन स्याद्वाद (अपेक्षा-वाद) के द्वारा समन्वय करना शुरू किया और उनके एकान्त मन्तव्योंका समुचित निरसन किया। केवल आत्माकी नित्यता या अनित्यता वैदिक हिंसाका विधान या निषेध नहीं कर सकती है। विधान और नित्यता, निषेध और अनित्यतामें व्याप्ति नहीं हैं। यह नहीं कहा जा सकता है कि आत्मा नित्य हैं इसलिए वैदिक हिंसाके करनेमें कोई दोष-जीवघात नहीं है, वैदिक हिंसा वैध है और यह भी नहीं कहा जा सकता है कि आत्मा अनित्य है इसलिये वैदिक हिंसा दोष—जीवघात है—वैदिक हिंसा निषिद्ध है। नित्यता और अनित्यता परस्परमें सप्रतिपक्ष हैं।

अतः इस प्रकारसे समझना चाहिये कि आत्मा नित्य भी है और अनित्य भी। चैतन्यस्वरूप आत्म-द्रव्य हर अवस्थाओंमें रहता है उसका विनाश नहीं होता है, लेकिन अवस्थायें—पर्यायें बदलती रहती हैं, उनका विनाश होता है और ये पर्यायें आत्मद्रव्यसे पृथक् नहीं की जा सकती हैं, इसलिये अभिन्न हैं और द्रव्य पर्यायका भेद सुप्रतीत होता है, इसलिए भिन्न भी हैं। यज्ञोंमें किया गया पशुबध अवश्य हिंसा—जीवघात है क्योंकि शरीरादिके नाश होनेपर आत्माका भी नाश होता है। जैसे तिलमें तेल सर्वत्र व्याप्त होकर रहता है उसी प्रकार शरीरके अवयवोंमें आत्मा व्याप्त होकर रहती है। यही बात है कि अंगुली आदिके कट जानेपर कष्ट होता है, वेदना होती है। हिंसाका अर्थ ही जीवघात है, केवल घात या विनाश नहीं। इसीलिये हिंसा शब्दका प्रयोग अचेतन जड़पदार्थोंमें नहीं होता है। अतः स्पष्ट है कि यज्ञोंमें किया गया पशुवध जीवघात है क्योंकि वह संकल्पपूर्वक—जान-बूझकर किया जाता है प्रसिद्ध कसा-इयोंके पशुवधके समान। यद्यपि घर-बार बनाने, कुटुम्ब परिपालन करने, आजीविकोपार्जन करने, मन्दिर आदिके निर्माण करानेमें भी हिंसा—जीवघात होता है। पर यह हिंसा गृहस्थपदकी हैसियतसे क्षम्य है, अनि-वार्य है, असंकल्पपूर्वक है, साधुपदकी हैसियतसे तो यह भी अक्षम्य एवं निवार्य है, तब धर्मकी ओटमें यज्ञोंमें याज्ञिक गृहस्थों द्वारा की जानेवाली निवार्थ संकल्पी हिंसा कैसे जायज हो सकती है या वैध कही जा सकती है? दूसरी बात यह है कि वेदमें कही हिंसा धर्म नहीं है, उससे अपने तथा दूसरोंको वेदना—दुःख उत्पन्न होता है, राग-द्वेष आदि प्रमत्त भावोंसे की जाती है। हिंसा कभी भी धर्म नहीं है और न हुई है और न होगी। अहिंसा ही आत्माका निज धर्म है और वही प्राणियोंको संसार-समुद्रसे पार उतारनेवाली है। संसारकी वह पुस्तक धर्मपुस्तक नहीं है जिसमें हिंसाका प्रतिपादन है। वह केवल एकदेशीय लोगों द्वारा जनताको ठगनेके लिये लिखी गई है। अतः स्पष्ट है कि यज्ञोंमें किया गया पशुवध धर्म नहीं है। हाँ, यदि यज्ञ करना ही है तो निम्न प्रकारका यज्ञ करो—अपनी अन्तरात्माको कुण्ड बनाओ, उसमें ध्यानरूपी अग्नि जलाओ और उसे इन्द्रियोंके निग्रहरूप दमरूपी पवनसे उद्दीपित करो तथा उसमें अशुभकर्मरूपी ईंधनकी आहुति दो। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको नष्ट करनेवाले कषायरूपी पशुओंका शमरूपी मन्त्रोंका उच्चारण करके हवन करो। ऐसा आत्मयज्ञ ही विद्वानों द्वारा विधेय है। कर्म-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमुक्तिका सीधा मार्ग है । भूतयज्ञ—पशुयज्ञ तुम्हारी कर्मविमुक्तिका मार्ग नहीं है, प्रत्युत कर्म-युक्तिका मार्ग है, दुर्गतिका कारण है । अतः यज्ञोंमें किया गया पशु-वध धर्म नहीं है ।

बौद्धोंका आत्माको सर्वथा क्षणिक मानना प्रत्यक्ष-प्रमाणसे बाधित है । प्रत्यक्षसे समस्त पदार्थ स्थिर स्थूल प्रतीत होते हैं । "असत्का उत्पाद नहीं होता है और सत्का विनाश नहीं होता" अर्थात् जो नहीं है वह उत्पन्न नहीं हो सकता और जो है—जिसका सद्भाव है उसका सर्वथा विनाश—अभाव नहीं हो सकता । इस सिद्धान्तके अनुसार आत्मा जब सद्—सद्भावरूप है तो उसका सर्वथा विनाश नहीं हो सकता । पर्यायरूपसे नाश होनेपर भी द्रव्यरूपसे उसका अवस्थान बना ही रहता है । अतः आत्माकी अनित्यताको लेकर वैदिक हिंसाका निषेध नहीं हो सकता । उसका तो उपर्युक्त ढंगसे ही निषेध हो सकता है । इस प्रकार भगवान् महावीरने ऐसी-ऐसी अनेकों समस्यायें हल कीं और विश्वको समभाव द्वारा सन्मार्गपर लगाया । भगवान् महावीरके ही सिद्धान्तोंपर महात्मा गांधी चले और समस्त राष्ट्रको चलाया है ।

सत्य और अहिंसा आत्माकी अपनी विभूति हैं । उन्हें हम भूले हुए हैं । भगवान् महावीर द्वारा प्रदर्शित सत्य और अहिंसाका आलोक स्थायी आलोक है । उसे हमें पूर्ण नैतिकताके साथ प्राप्त करना चाहिये । हमें भगवान् महावीरके पूर्ण कृतज्ञ होना चाहिये तथा उनके आदर्शों—उसूलों—सिद्धान्तोंका हार्दिकतासे अनुशीलन करना चाहिये ।

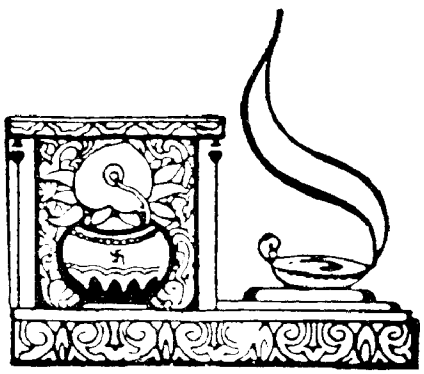

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org